.. Dnyaneshvari or Bhavarthadipika Chapter 1 ..

॥ ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय १ ॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥
अध्याय पहिला ।
अर्जुनविषादयोगः ।

ॐ नमो जी आद्या। वेद प्रतिपाद्या। जय जय स्वसंवेद्या। आत्मरूपा ॥ १॥
देवा तूंचि गणेशु। सकलार्थमतिप्रकाशु। म्हणे निवृत्तिदासु। अवधारिजो जी ॥ २॥
हें शब्दब्रह्म अशेष। तेचि मूर्ति सुवेष। जेथ वर्णवपु निर्दोष। मिरवत असे ॥ ३॥
स्मृति तेचि अवयव। देखा आंगीक भाव। तेथ लावण्याची ठेव। अर्थशोभा ॥ ४॥
अष्टादश पुराणें। तींचि मणिभूषणें। पदपद्धति खेवणें। प्रमेयरत्नांचीं ॥ ५॥
पदबंध नागर। तेंचि रंगाथिले अंबर। जेथ साहित्य वाणें सपूर। उजाळाचें ॥ ६॥
देखा काव्य नाटका। जे निर्धारितां सकौतुका। त्याचि रुणझुणती क्षुद्रघंटिका। अर्थध्वनि ॥ ७॥
नाना प्रमेयांची परी। निपुणपणें पाहतां कुसरी। दिसती उचित पदें माझारीं। रत्नें भलीं ॥ ८॥
तेथ व्यासादिकांच्या मतीं। तेचि मेखळा मिरवती। चोखाळपणें झळकती। पल्लवसडका ॥ ९॥
देखा षड्दर्शनें म्हणिपती। तेची भुजांची आकृति। म्हणौनि विसंवादे धरिती। आयुधें हातीं ॥ १०॥
तरी तर्कु तोचि फरशु। नीतिभेदु अंकुशु। वेदांतु तो महारसु। मोदकु मिरवे ॥ ११॥
एके हातीं दंतु। जो स्वभावता खंडितु। तो बौद्धमतसंकेतु। वार्तिकांचा ॥ १२॥
मग सहजें सत्कारवादु। तो पद्मकरु वरदु। धर्मप्रतिष्ठा तो सिद्धु। अभयहस्तु ॥ १३॥
देखा विवेकवंतु सुविमळु। तोचि शुंडादंडु सरळु। जेथ परमानंदु केवळु। महासुखाचा ॥ १४॥
तरी संवादु तोचि दशनु। जो समता शुभ्रवर्णु। देवो उन्मेषसूक्ष्मेक्षणु। विघ्नराजु ॥ १५॥
मज अवगमलिया दोनी। मिमांसा श्रवणस्थानीं। बोधमदामृत मुनी। अली सेविती ॥ १६॥
प्रमेयप्रवाल सुप्रभ। द्वैताद्वैत तेचि निकुंभ। सरिसेपणें एकवटत इभ-। मस्तकावरी ॥ १७॥
उपरि दशोपनिषदें। जियें उदारें ज्ञानमकरंदे। तियें कुसुमें मुगुटीं सुगंधें। शोभती भलीं ॥ १८॥
अकार चरण युगल। उकार उदर विशाल। मकार महामंडल। मस्तकाकारें ॥ १९॥
हे तीन्ही एकवटले। तेथ शब्दब्रह्म कवळलें। तें मियां श्रीगुरुकृपा नमिलें। आदिबीज ॥ २०॥
आतां अभिनव वाग्विलासिनी। ते चातुर्यार्थकलाकामिनी। ते शारदा विश्वमोहिनी। नमिली मियां ॥ २१॥
मज हृदयीं सद्गुरु। जेणें तारिलों हा संसारपूरु। म्हणौनि विशेषें अत्यादरु। विवेकावरी ॥ २२॥
जैसें डोळ्यां अंजन भेटे। ते वेळीं दृष्टीसी फांटा फुटे। मग वास पाहिजे तेथ। प्रगटे महानिधी ॥ २३॥
कां चिंतामणी जालियां हातीं। सदा विजयवृत्ति मनोरथीं। तैसा मी पूर्णकाम श्रीनिवृत्ति। ज्ञानदेवो म्हणे ॥ २४॥
म्हणोनि जाणतेनें गुरु भजिजे। तेणें कृतकार्य होईजे। जैसें मुळसिंचनें सहजें। शाखापल्लव संतोषती ॥ २५॥
कां तीर्थें जियें त्रिभुवनीं। तियें घडती समुद्रावगाहनीं। ना तरी अमृतरसास्वादनीं। रस सकळ ॥ २६॥
तैसा पुढतपुढती तोचि। मियां अभिवंदिला श्रीगुरुचि। जो अभिलषित मनोरुचि। पुरविता तो ॥ २७॥
आतां अवधारा कथा गहन। जे सकळां कौतुकां जन्मस्थान। कीं अभिनव उद्यान। विवेकतरूचें ॥ २८॥

ना तरी सर्व सुखाचि आदि। जे प्रमेयमहानिधि। नाना नवरससुधाब्धि। परिपुर्ण हे ॥ २९॥
कीं परमधाम प्रकट। सर्व विद्यांचे मूळपीठ। शास्त्रजाता वसौट। अशेषांचें ॥ ३०॥
ना तरी सकळ धर्मांचें माहेर। सज्जनांचे जिव्हार। लावण्यरत्नभांडार। शारदेचें ॥ ३१॥
नाना कथारूपें भारती। प्रकटली असे त्रिजगतीं। आविष्करोनि महामतीं। व्यासाचिये ॥ ३२॥
म्हणौनि हा काव्यांरावो। ग्रंथ गुरुवतीचा ठावो। एथूनि रसां झाला आवो। रसाळपणाचा ॥ ३३॥
तेवींचि आइका आणिक एक। एथूनि शब्दश्री सच्छास्त्रिक। आणि महाबोधीं कोंवळीक। दुणावली ॥ ३४॥
एथ चातुर्य शहाणें झालें। प्रमेय रुचीस आलें। आणि सौभाग्य पोखलें। सुखाचें एथ ॥ ३५॥
माधुर्यीं मधुरता। श्रुंगारीं सुरेखता। रूढपण उचितां। दिसे भलें ॥ ३६॥
एथ कळाविदपण कळा। पुण्यासि प्रतापु आगळा। म्हणौनि जनमेजयाचे अवलीळा। दोष हरले ॥ ३७॥
आणि पाहतां नावेक। रंगीं सुरंगतेची आगळीक। गुणां सगुणपणाचें बिक। बहुवस एथ ॥ ३८॥
भानुचेनि तेजें धवळलें। जैसे त्रैलोक्य दिसे उजळिलें। तैसें व्यासमति कवळिलें। मिरवे विश्व ॥ ३९॥
कां सुक्षेत्रीं बीज घातलें। तें आपुलियापरी विस्तारलें। तैसें भारतीं सुरवाडलें। अर्थजात ॥ ४०॥
ना तरी नगरांतरीं वसिजे। तरी नागराचि होईजे। तैसें व्यासोक्तितेजें। धवळत सकळ ॥ ४१॥
कीं प्रथमवयसाकाळीं। लावण्याची नव्हाळी। प्रगटे जैसी आगळी। अंगनाअंगीं ॥ ४२॥
ना तरी उद्यानीं माधवी घडे। तेथ वनशोभेची खाणी उघडे। आदिलापासौनि अपाडें। जियापरी ॥ ४३॥
नानाघनीभूत सुवर्ण। जैसें न्याहाळितां साधारण। मग अलंकारीं बरवेपण। निवाडु दावी ॥ ४४॥
तैसें व्यासोक्ति अळंकारिलें। आवडे तें बरवेपण पातलें। तें जाणोनि काय आश्रयिलें। इतिहासीं ॥ ४५॥
नाना पुरतिये प्रतिष्ठेलागीं। सानीव धरूनि आंगीं। पुराणें आख्यानरूपें जगीं। भारता आलीं ॥ ४६॥
म्हणौनि महाभारतीं नाहीं। तें नोहेचि लोकीं तिहीं। येणें कारणें म्हणिपे पाहीं। व्यासोच्छिष्ट जगत्रय ॥ ४७॥
ऐसी जगीं सुरस कथा। जें जन्मभूमि परमार्था। मुनि सांगे नृपनाथा। जनमेजया ॥ ४८॥
जें अद्वितीय उत्तम। पवित्रैक निरुपम। परम मंगलधाम। अवधारिजो ॥ ४९॥
आतां भारतकमळपरागु। गीताख्यु प्रसंगु। जो संवादला श्रीरंगु। अर्जुनेंसीं ॥ ५०॥
ना तरी शदब्रह्माब्धि। मथियला व्यासबुद्धि। निवडिलें निरवधि। नवनीत हें ॥ ५१॥
मग ज्ञानाग्निसंपर्कें। कडसिलेंनि विवेकें। पद आलें परिपाकें। आमोदासी ॥ ५२॥
जें अपेक्षिजे विरक्तीं। सदा अनुभविजे संतीं। सोहंभावें पारंगतीं। रमिजे जेथ ॥ ५३॥
जें आकर्णिजें भक्तीं। जें आदिवंद्य त्रिजगतीं। तें भीष्मपर्वीं संगती। म्हणितली कथा ॥ ५४॥
जें भगवद्गीता म्हणिजे। जें ब्रह्मेशांनीं प्रशंसिजे। जें सनकादिकीं सेविजे। आदरेंसीं ॥ ५५॥
जैसें शारदीचिये चंद्रकळे। माजि अमृतकण कोंवळे। ते वेंचिती मनें मवाळें। चकोरतलगें ॥ ५६॥
तियापरी श्रोतां। अनुभवावी हे कथा। अतिहळुवारपण चित्ता। आणूनियां ॥ ५७॥
हें शब्देंवीण संवादिजे। इंद्रियां नेणतां भोगिजे। बोलाआधि झोंबिजे। प्रमेयासी ॥ ५८॥
जैसे भ्रमर परागु नेती। परी कमळदळें नेणती। तैसी परी आहे सेविती। ग्रंथीं इये ॥ ५९॥
कां आपुला ठावो न सांडितां। आलिंगिजे चंद्रु प्रकटतां। हा अनुरागु भोगितां। कुमुदिनी जाणे ॥ ६०॥
ऐसेनि गंभीरपणें। स्थिरावलोनि अंतःकरणें। आथिला तोचि जाणें। मानूं इये ॥ ६१॥
अहो अर्जुनाचिये पांती। जे परिसणया योग्य होती। तिहीं कृपा करूनि संतीं। अवधान द्यावें ॥ ६२॥
हें सलगी म्यां म्हणितलें। चरणां लागोनि विनविलें। प्रभू सखोल हृदय आपुलें। म्हणौनियां ॥ ६३॥
जैसा स्वभावो मायबापांचा। अपत्य बोले जरी बोबडी वाचा। तरी अधिकचि तयाचा। संतोष आथी ॥ ६४॥

तैसा तुम्हीं मी अंगिकारिला। सज्जनीं आपुला म्हणितला। तरी उणें सहजें उपसाहला। प्रार्थूं कायी ॥ ६५॥
परी अपराधु तो आणिक आहे। जे मी गीतार्थु कवळुं पाहें। तें अवधारा विनवूं लाहें। म्हणौनियां ॥ ६६॥
हें अनावर न विचारितां। वायांचि धिंवसा उपनला चित्ता। येऱ्हवीं भानुतेजीं काय खद्योता। शोभा आथी ॥ ६७॥
कीं टिटिभू चांचुवरी। माप सूये सागरीं। मी नेणतु त्यापरी। प्रवर्तें येथ ॥ ६८॥
आइका आकाश गिंवसावें। तरी आणीक त्याहूनि थोर होआवें। म्हणौनि अपाडू हें आघवें। निर्धारितां ॥ ६९॥
या गीतार्थाची थोरी। स्वयें शंभू विवरी। जेथ भवानी प्रश्नु करी। चमत्कारौनि ॥ ७०॥
तेथ हरु म्हणे नेणिजे। देवी जैसें कां स्वरूप तुझें। तैसें हें नित्य नूतन देखिजे। गीतातत्व ॥ ७१॥
हा वेदार्थ सागरु। जया निद्रिताचा घोरु। तो स्वयें सर्वेश्वरु। प्रत्यक्ष अनुवादला ॥ ७२ ॥
ऐसे जें अगाध। जेथ वेडावती वेद। तेथ अल्प मी मतिमंद। काई होये ॥ ७३॥
हें अपार कैसेनि कवळावें। महातेज कवणें धवळावें। गगन मुठीं सुवावें। मशकें केवीं ? ॥ ७४॥
परी एथ असे एकु आधारु। तेणेंचि बोले मी सधरु। जे सानुकूळ श्रीगुरु। ज्ञानदेवो म्हणे ॥ ७५॥
येऱ्हवीं तरी मी मुर्खु। जरी जाहला अविवेकु। तऱ्ही संतकृपादीपकु। सोज्वळु असे ॥ ७६॥
लोहाचें कनक होये। हें सामर्थ्य परिसींच आहे। कीं मृतही जीवित लाहे। अमृतसिद्धि ॥ ७७॥
जरी प्रकटे सिद्धसरस्वती। तरी मुकयाहि आथी भारती। एथ वस्तुसामर्थ्यशक्ति। नवल कयी ॥ ७८॥
जयातें कामधेनु माये। तयासी अप्राप्य कांहीं आहे। म्हणौनि मी प्रवर्तों लाहें। ग्रंथीं इये ॥ ७९॥
तरी न्यून ते पुरतें। अधिक तें सरतें। करूनि घेयावें हें तुमतें। विनवितु असे ॥ ८०॥
आतां देईजो अवधान। तुम्हीं बोलविल्या मी बोलेन। जैसे चेष्टे सूत्राधीन। दारुयंत्र ॥ ८१॥
तैसा मी अनुग्रहीतु। साधूंचा निरूपितु। ते आपुलियापरी अलंकारितु। भलतयापरी ॥ ८२॥
तंव श्रीगुरु म्हणती राहीं। हे तुज बोलावें नलगे कांहीं। आतां ग्रंथा चित्त देईं। झडकरी वेगां ॥ ८३॥
या बोला निवृत्तिदासु। पावूनि परम उल्हासु। म्हणे परियसा मना अवकाशु। देऊनियां ॥ ८४॥

धृतराष्ट्र उवाच ।
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १॥

तरी पुत्रस्नेहें मोहितु। धृतराष्ट्र असे पुसतु। म्हणे संजया सांगे मातु। कुरुक्षेत्रींची ॥ ८५॥
जें धर्मालय म्हणिजे। तेथ पांडव आणि माझे। गेले असती व्याजें। जुंझाचेनि ॥ ८६॥
तरी तेचि येतुला अवसरीं। काय किजत असे येरयेरीं। ते झडकरी कथन करी। मजप्रती ॥ ८७॥

संजय उवाच ।
दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २॥

तिये वेळीं तो संजय बोले। म्हणे पांडव सैन्य उचललें। जैसें महाप्रळयीं पसरलें। कृतांतमुख ॥ ८८॥
तैसें तें घनदाट। उठावलें एकवाट। जैसें उसळलें काळकूट। धरी कवण ॥ ८९॥
नातरी वडवानळु सादुकला। प्रळयवातें पोखला। सागरु शोषूनि उधवला। अंबरासी ॥ ९०॥

तैसें दळ दुर्धर। नानाव्यूहीं परीकर। अवगमलें भयासुर। तिये काळीं ॥ ९१॥
तें देखोनियां दुर्योधनें। अव्हेरिलें कवणें मानें। जैसे न गणिजे पंचाननें। गजघटांतें ॥ ९२॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३॥

मग द्रोणापासीं आला। तयांतें म्हणे हा देखिला। कैसा दळभारू उचलला। पांडवांचा ॥ ९३॥
गिरिदुर्ग जैसे चालते। तैसे विविध व्यूह सभंवते। रचिले आथी बुद्धिमंतें। द्रुपदकुमरें ॥ ९४॥
जो हा तुम्हीं शिक्षापिला। विद्या देऊनि कुरुठा केला। तेणें हा सैन्यसिंहु पाखरिला। देख देख ॥ ९५॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४॥

आणिकही असाधारण। जे शस्त्रास्त्रीं प्रवीण। क्षात्रधर्मीं निपुण। वीर आहाती ॥ ९६॥
जे बळें प्रौढी पौरुषें। भीमार्जुनांसारिखे। ते सांगेन कौतुकें। प्रसंगेची ॥ ९७॥
एथ युयुधानु सुभटु। आला असे विराटु। महारथी श्रेष्ठु। द्रुपद वीरु ॥ ९८॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६॥

चेकितान धृष्टकेतु। काशिराज वीर विक्रांतु। उत्तमौजा नृपनाथु। शैब्य देख ॥ ९९॥
हा कुंतिभोज पाहें। एथ युधामन्यु आला आहे। आणि पुरुजितादि राय हे। सकळ देख ॥ १००॥
हा सुभद्राहृदयनंदनु। जो अपरु नवार्जुनु। तो अभिमन्यु म्हणे दुर्योधनु। देखें द्रोणा ॥ १०१॥
आणीकही द्रौपदीकुमर। हे सकळही महारथी वीर। मिती नेणिजे परी अपार। मीनले असती ॥ १०२॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ ७॥
भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८॥

आतां आमुच्या दळीं नायक। जे रूढवीर सैनिक। ते प्रसंगें आइक। सांगिजती ॥ १०३॥
उद्देशें एक दोनी। जायिजती बोलोनी। तुम्ही आदिकरूनी। मुख्य जे जें ॥ १०४॥
हा भीष्म गंगानंदनु। जो प्रतापतेजस्वी भानु। रिपुगजपंचाननु। कर्णवीरु ॥ १०५॥
या एकेकाचेनी मनोव्यापारें। हें विश्व होय संहरे। हा कृपाचार्यु न पुरे। एकलाचि ॥ १०६॥

एथ विकर्ण वीरु आहे। हा अश्वत्थामा पैल पाहें। याचा आडदरु सदां वाहे। कृतांतु मनीं ॥१०७॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥९॥

समितिंजयो सौमदत्ती। ऐसे आणीकही बहुत आहाती। जयांचिया बळा मिती। धाताही नेणें ॥१०८॥
जे शास्त्रविद्यापारंगत। मंत्रावतार मूर्त। हो कां जें अस्त्रजात। एथूनि रूढ ॥१०९॥
हे अप्रतिमल्ल जगीं। पुरता प्रतापु अंगीं। परी सर्व प्राणें मजलागीं। आरायिले असती ॥११०॥
पतिव्रतेचें हृदय जैसें। पतिवांचूनि न स्पर्शे। मी सर्वस्व या तैसें। सुभटांसी ॥१११॥
आमुचिया काजाचेनि पाडें। देखती आपुलें जीवित थोकडें। ऐसे निरवधि चोखडें। स्वामिभक्त ॥११२॥
झुंजती कुळकणी जाणती। कळे किर्तीसी जिती। हे बहु असो क्षात्रनीति। एथोनियां ॥११३॥
ऐसे सर्वांपरि पुरते। वीर दळीं आमुते। आतं काय गणूं यांतें। अपार हे ॥११४॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

वरी क्षत्रियांमाजी श्रेष्ठु। जो जगजेठी जगीं सुभटु। तया दळवैपणाचा पाटु। भीष्मासि पैं ॥११५॥
आतां याचेनि बळें गवसलें। हे दुग जैसे पन्नासिलें। येणें पाडें थेकुलें। लोकत्रय ॥११६॥
आधींच समुद्र पाहीं। तेथ दुवाडपण कवणा नाहीं। मग वडवानळु तैसे याही। विरजा जैसा ॥११७॥
ना तरीं प्रळयवन्ही महावातु। या दोघां जैसा सांधातु। तैसा हा गंगासुतु। सेनापति ॥११८॥
आतां येणेंसि कवण भिडे। हें पांडवसैन्य कीर थोकडें। परि वरचिलेनि पाडें। दिसत असे ॥११९॥
वरी भीमसेनु बेथु। तो जाहला असे सेनानाथु। ऐसें बोलोनियां मातु। सांडिली तेणें ॥१२०॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥

मग पुनरपि काय बोले। सकळ सैनिकांतें म्हणितलें। आतां दळभार आपुलाले। सरसे करा ॥१२१॥
जया जिया अक्षौहिणी। तेणें तिया आरणी। वरगण कवणकवणी। महारथीया ॥१२२॥
तेणें तिया आवरिजे। भीष्मातळीं राहिजे। द्रोणातें म्हणे पाहिजे। तुम्हीं सकळ ॥१२३॥
हाचि एकु रक्षावा। मी तैसा हा देखावा। येणें दळभारु आघवा। साचु आमुचा ॥१२४॥

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

या राजयाचिया बोला। सेनापति संतोषला। मग तेणें केला। सिंहनादु ॥१२५॥
तो गाजत असे अद्‌भुतु। दोन्ही सैन्याआंतु। प्रतिध्वनि न समातु। उपजत असे ॥१२६॥

तयाचि तुलगासवें। वीरवृत्तीचेनि थावें। दिव्य शंख भीष्मदेवें। आस्फुरिला ॥ १२७॥
ते दोन्ही नाद मीनले। तेथ त्रैलोक्य बधिरीभूत जाहलें। जैसें आकाश कां पडिलें। तुटोनिया ॥ १२८॥
घडघडीत अंबर। उचंबळत सागर। क्षोभलें चराचर। कांपत असे ॥ १२९॥
तेणें महाघोषगजरें। दुमदुमिताती गिरिकंदरें। तव दळामाजीं रणतुरें। आस्फुरिलीं ॥ १३०॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३॥

उदंड सैंघ वाजतें। भयानखें खाखातें। महाप्रळयो जेथें। धाकडांसी ॥ १३१॥
भेरी निशाण मांदळ। शंख काहळ भोंगळ। आणि भयासुर रणकोल्हाळ। सुभटांचे ॥ १३२॥
आवेशें भुजा त्राहाटिती। विसणेले हांका देती। जेथ महामद भद्रजाती। आवरती ना ॥ १३३॥
तेथ भेडांची कवण मातु। कांचया केर फिटतु। जेणें दचकला कृतांतु। आंग नेघे ॥ १३४॥
एकां उभयाचि प्राण गेले। चांगांचे दांत बैसले। बिरुदाचे दादुले। हिंवताती ॥ १३५॥
ऐसा अद्भुत तूरबंबाळु। ऐकोनि ब्रह्मा व्याकुळु। देव म्हणती प्रळयकाळु। वोढवला आजी ॥ १३६॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४॥
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६॥

ऐसी स्वर्गीं मातु। देखोनि तो आकांतु। तव पांडवदळाआंतु। वर्तलें कायी ॥ १३७॥
हो कां निजसार विजयाचें। कीं तें भांडार महातेजाचें। जेथ गरुडाचिये जावळियेचे। कांतले चाऱ्ही ॥ १३८॥
कीं पाखांचा मेरु जैसा। रहंवरु मिरवतसे तैसा। तेजें कोंदाटलिया दिशा। जयाचेनि ॥ १३९॥
जेथ अश्ववाहकु आपण। वैकुंठींचा राणा जाण। तया रथाचे गुण। काय वर्णूं ॥ १४०॥
ध्वजस्तंभावरी वानरु। तो मुर्तिमंत शंकरु। सारथी शारङ्गधरु। अर्जुनेसीं ॥ १४१॥
देखा नवल तया प्रभूचें। अद्‌भुत प्रेम भक्ताचें। जें सारथ्यपण पार्थाचें। करितु असे ॥ १४२॥
पाइकु पाठींसी घातला। आपण पुढां राहिला। तेणें पाञ्चजन्यु आस्फुरिला। अवलीळाचि ॥ १४३॥
परि तो महाघोषु थोरु। गर्जतु असे गंहिरु। जैसा उदेला लोपी दिनकरु। नक्षत्रांतें ॥ १४४॥
तैसें तुरबंबाळु भंवते। कौरवदळीं गाजत होते। ते हारपोनि नेणों केउते। गेले तेथ ॥ १४५॥
तैसाचि देखे येरे। निनादें अति गहिरे। देवदत्त धनुर्धरें। आस्फुरिला ॥ १४६॥
ते दोन्ही शब्द अचाट। मिनले एकवट। तेथ ब्रह्मकटाह शतकूट। हों पाहत असे ॥ १४७॥
तंव भीमसेनु विसणैला। जैसा महाकाळु खवळला। तेणें पौण्ड्र आस्फुरिला। महाशंखु ॥ १४८॥
तो महाप्रलयजलधरु। जैसा घडघडिला गहिंरु। तंव अनंतविजयो युधिष्ठिरु। आस्फुरित असे ॥ १४९॥
नकुळें सुघोषु। सहदेवें मणिपुष्पकु। जेणें नादें अंतकु। गजबजला ठाके ॥ १५०॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ १८॥
स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९॥

तेथ भूपति होते अनेक। द्रुपद द्रौपदेयादिक। हा काशीपति देख। महाबाहु ॥ १५१॥
तेथ अर्जुनाचा सुतु। सात्यकि अपराजितु। धृष्टद्युम्नु नृपनाथु। शिखंडी हन ॥ १५२॥
विराटादि नृपवर। जे सैनिक मुख्य वीर। तिहीं नानाशंख निरंतर। आस्फुरिले ॥ १५३॥
तेणें महाघोषनिर्घातें। शेष कूर्म अवचितें। गजबजोनि भूभारातें। सांडूं पाहती ॥ १५४॥
तेथ तीन्ही लोक डळमळित। मेरु मांदार आंदोळित। समुद्रजळ उसळत। कैलासवेरी ॥ १५५॥
पृथ्वीतळ उलथों पहात। आकाश असे आसुडत। तेथ सडा होत। नक्षत्रांचा ॥ १५६॥
सृष्टी गेली रे गेली। देवां मोकळवादी जाहली। ऐशी एक टाळी पिटली। सत्यलोकीं ॥ १५७॥
दिहाचि दिन थोकला। जैसा प्रलयकाळ मांडला। तैसा हाहाकारु जाहला। तिन्हीं लोकीं ॥ १५८॥
तें देखोनि आदिपुरुषु विस्मितु। म्हणे झणें होय पां अंतु। मग लोपिला अद्भुतु। संभ्रमु तो ॥ १५९॥
म्हणौनि विश्व सांवरलें। एऱ्हवीं युगांत होतें वोडवलें। जैं महाशंख आस्फुरिले। कृष्णादिकीं ॥ १६०॥
तो घोष तरी उपसंहरला। परि पडिसाद होता राहिला। तेणें दळभार विध्वंसिला। कौरवांचा ॥ १६१॥
जैसा गजघटाआंतु। सिंह लीला विदारितु। तैसा हृदयातें भेदितु। कौरवांचिया ॥ १६२॥
तो गाजत जंव आइकती। तंव उभेचि हिये घालिती। एकमेकांतें म्हणती। सावध रे सावध ॥ १६३॥

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ २०॥

तेथ बळें प्रौढीपुरतें। महारथी वीर होते। तिहीं पुनरपि दळातें। आवरिलें ॥ १६४॥
मग सरिसेपणें उठावले। दुणवटोनि उचलले। तया दंडीं क्षोभलें। लोकत्रय ॥ १६५॥
तेथ बाणवरी धर्नुधर। वर्षताती निरंतर। जैसे प्रळयांत जलधर। अनिवार कां ॥ १६६॥
ते देखलिया अर्जुनें। संतोष घेऊनि मनें। मग संभ्रमें दिठी सेने। घालीतसे ॥ १६७॥
तंव संग्रामीं सज्ज जाहले। सकळ कौरव देखिले। तंव लीलाधनुष्य उचललें। पंडुकुमरें ॥ १६८॥

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
अर्जुन उवाच ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१॥
यावदेतान्निरिक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।

कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२॥
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३॥

ते वेळीं अर्जुन म्हणतसे देवा। आतां झडकरी रथु पेलावा। नेऊनि मध्यें घालावा। दोहीं दळां ॥ १६९॥
जंव मी नावेक। हे सकळ वीर सैनिक। न्याहाळीन अशेख। झुंजते ते ॥ १७०॥
येथ आले असती आघवें। परी कवणेंसीं म्यां झुंजावें। हे रणीं लागे पहावें। म्हणौनियां ॥ १७१॥
बहुतकरूनि कौरव। हे आतुर दुःस्वभाव। वांटिवेवीण हांव। बांधिती झुंजीं ॥ १७२॥
झुंजाची आवडी धरिती। परी संग्रामीं धीर नव्हती। हें सांगोनि रायाप्रती। काय संजयो म्हणे ॥ १७३॥

सञ्जय उवाच ।
एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५॥
तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥ २६॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥ २७॥
कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदमब्रवीत् ।

आइका अर्जुन इतुकें बोलिला। तंव श्रीकृष्णें रथु पेलिला। दोही सैन्यांमाजीं केला। उभा तेणें ॥ ७४॥
जेथ भीष्मद्रोणादिक। जवळिकेचि सन्मुख। पृथिवीपति आणिक। बहुत आहाती ॥ ७५॥
तेथ स्थिर करूनियां रथु। अर्जुन असे पाहातु। तो दळभार समस्तु। संभ्रमेंसीं ॥ ७६॥
मग देवा म्हणे देख देख। हे गुरुगोत्र अशेख। तंव कृष्णमनीं नावेक। विस्मो जाहला ॥ ७७॥
तो आपणयां आपण म्हणे। एथ कायी कवण जाणे। हें मनीं धरलें येणें। परि कांहीं आश्चर्य असे ॥ ७८॥
ऐसी पुढील से घेतु। तो सहजें जाणें हृदयस्थु। परि उगा असे निवांतु। तिये वेळीं ॥ १७९॥
तंव तेथ पार्थु सकळ। पितृ पितामह केवळ। गुरु बंधु मातुळ। देखता जाहला ॥ १८०॥
इष्ट मित्र आपुले। कुमरजन देखिले। हे सकळ असती आले। तयांमाजी ॥ १८१॥
सुहृज्जन सासरे। आणीकही सखे सोइरे। कुमर पौत्र धर्नुर्धरें। देखिले तेथ ॥ १८२॥
जयां उपकार होते केले। कीं आपदीं जे रक्षिले। हे असो वडील धाकुले। आदिकरूनि ॥ १८३॥
ऐसें गोत्रचि दोहीं दळीं। उदित जालें असे कळीं। हे अर्जुनें तिये वेळीं। अवलोकिलें ॥ १८४॥
तेथ मनीं गजबज जाहली। आणि आपैसी कृपा आली। तेणें अपमानें निघाली। वीरवृत्ति ॥ १८५॥
जिया उत्तम कुळींचिया होती। आणि गुणलावण्य आथी। तिया आणिकीतें न साहती। सुतेजपणें ॥ १८६॥
नविये आवडीचेनि भरें। कामुक निजवनिता विसरे। मग पाडेंवीण अनुसरे। भ्रमला जैसा ॥ १८७॥
कीं तपोबळें ऋद्धी। पातलिया भ्रंशे बुद्धी। मग तया विरक्तता सिद्धी। आठवेना ॥ १८८॥

तैसें अर्जुना तेथ जाहलें। असतें पुरुषत्व गेलें। जे अंतःकरण दिधलें। कारुण्यासी ॥१८९॥
देखा मंत्रज्ञु बरळु जाय। मग तेथ कां जैसा संचारु होय। तैसा तो धनुर्धर महामोहें। आकळिला ॥१९०॥
म्हणौनि असतां धीरु गेला। हृदया द्रावो आला। जैसा चंद्रकळीं शिवतला। सोमकांतु ॥१९१॥
तयापरी पार्थु। अतिस्नेहें मोहितु। मग सखेद असे बोलतु। श्रीअच्युतेसीं ॥१९२॥

अर्जुन उवाच ।
दृष्ट्वेमम् स्वजनं कृष्ण युयुत्सुम् समुपस्थितम् ॥२८॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥२९॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥

तो म्हणे अवधारी देवा। म्यां पाहिला हा मेळावा। तंव गोत्र वर्गु आघवा। देखिला एथ ॥१९३॥
हें संग्रामीं उदित। जहाले असती कीर समस्त। पण आपणपेयां उचित। केवीं होय ॥१९४॥
येणें नांवेचि नेणों कायी। मज आपणपें सर्वथा नाहीं। मन बुद्धि ठायीं। स्थिर नोहे ॥१९५॥
देखे देह कांपत। तोंड असे कोरडें होत। विकळता उपजत। गात्रांसीही ॥१९६॥
सर्वांगा कांटाळा आला। अति संतापु उपनला। तेथ बेंबळ हातु गेला। गांडिवाचा ॥१९७॥
तें न धरतचि निष्टलें। परि नेणेंचि हातोनि पडिलें। ऐसें हृदय असे व्यापिलें। मोहें येणें ॥१९८॥
जें वज्रापासोनि कठिण। दुर्धर अतिदारुण। तयाहून असाधारण। हें स्नेह नवल ॥१९९॥
जेणें संग्रामीं हरु जिंतिला। निवातकवचांचा ठावो फेडिला। तो अर्जुन मोहें कवळिला। क्षणामाजीं ॥२००॥
जैसा भ्रमर भेदी कोडें। भलतैसें काष्ठ कोरडें। परि कळिकेमाजी सांपडे। कोंवळिये ॥२०१॥
तेथ उत्तीर्ण होईल प्राणें। परि तें कमळदळ चिरूं नेणें। तैसें कठिण कोवळेपणें। स्नेह देखा ॥२०२॥
हे आदिपुरुषाची माया। ब्रह्मेयाही नयेचि आया। म्हणौनि भुलविला ऐकें राया। संजयो म्हणे ॥२०३॥
अवधारी मग तो अर्जुनु। देखोनि सकळ स्वजनु। विसरला अभिमानु। संग्रामींचा ॥२०४॥
कैसी नेणों सदयता। उपनली तेथें चित्ता। मग म्हणे कृष्णा आतां। नसिजे एथ ॥२०५॥
माझें अतिशय मन व्याकुळ। होतसे वाचा बरळ। जे वधावे हे सकळ। येणें नांवें ॥२०६॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥

या कौरवां जरी वधावें। तरी युधिष्ठीरादिकां कां न वधावें। हे येरयेर आघवे। गोत्रज आमुचे ॥२०७॥
म्हणोनि जळो हें झुंज। प्रत्यया न ये मज। एणें काय काज। महापापें ॥२०८॥
देवा बहुतापरी पाहतां। एथ वोखटे होईल झुंजतां। वर कांहीं चुकवितां। लाभु आथी ॥२०९॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।

किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२॥
येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३॥
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥ ३४॥

तया विजयवृत्ती कांहीं। मज सर्वथा काज नाहीं। एथ राज्य तरी कायी। हे पाहुनियां ॥ २१०॥
या सकळांतें वधावें। मग हे भोग भोगावे। ते जळोत आघवे। पार्थु म्हणे ॥ २११॥
तेणें सुखेंविण होईल। तें भलतैसें साहिजेल। वरी जीवितही वेंचिजेल। याचिलागीं ॥ २१२॥
परी यांसी घातु कीजे। मग आपण राज्यसुख भोगिजे। हें स्वप्नींही मन माझें। करूं न शके ॥ २१३॥
तरी आम्हीं कां जन्मावें। कवणलागीं जियावें। जरी वडिलां यां चिंतावें। विरुद्ध मनें ॥ २१४॥
पुत्रातें इच्छी कुळ। तयाचें कायि हेंचि फळ। जे निर्दळिजे केवळ। गोत्र आपुलें ॥ २१५॥
हें मनींचि केविं धरिजे। आपण वज्राचेया होईजे। वरी घडे तरी कीजे। भलें इयां ॥ २१६॥
आम्हीं जें जें जोडावें। तें समस्तीं इहीं भोगावें। हें जीवितही उपकारावें। काजीं यांच्या ॥ २१७॥
आम्ही दिगंतीचे भूपाळ। विभांडूनि सकळ। मग संतोषविजे कुळ। आपुलें जें ॥ २१८॥
तेचि हे समस्त। परी कैसें कर्म विपरीत। जे जाहले असती उद्यत। झुंजावया ॥ २१९॥
अंतौरिया कुमरें। सांडोनियां भांडारें। शस्त्राग्रीं जिव्हारें। आरोपुनी ॥ २२०॥
ऐसियांतें कैसेनि मारूं ?। कवणावरी शस्त्र धरूं ?। निजहृदया करूं। घातु केवीं ? ॥ २२१॥
हें नेणसी तूं कवण। परी पैल भीष्म द्रोण। जयांचे उपकार असाधारण। आम्हां बहुत ॥ २२२॥
एथ शालक सासरे मातुळ। आणि बंधु कीं हे सकळ। पुत्र नातू केवळ। इष्टही असती ॥ २२३॥
अवधारी अति जवळिकेचे। हे सकळही सोयरे आमुचे। म्हणौनि दोष आथी वाचे। बोलितांचि ॥ २२४॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ ३५॥

हे वरी भलतें करितु। आतांचि येथें मारितु। परि आपण मनें घातु। न चिंतावा ॥ २२५॥
त्रैलोक्यींचें अनकळित। जरी राज्य होईल प्राप्त। तरी हें अनुचित। नाचरें मी ॥ २२६॥
जरी आजि एथ ऐसें कीजे। तरी कवणाच्या मनीं उरिजे ?। सांगे मुख केवीं पाहिजे। तुझें कृष्णा ? ॥ २२७॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाऽऽश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६॥

जरी वधु करोनि गोत्रजांचा। तरी वसौटा होऊनि दोषांचा। मज जोडिलासि तुं हातींचा। दूरी होसी ॥ २२८॥
कुळहरणीं पातकें। तिये आंगीं जडती अशेखें। तये वेळीं तुं कवणें कें। देखावासी ? ॥ २२९॥
जैसा उद्यानामाजीं अनळु। संचारला देखोनि प्रबळु। मग क्षणभरी कोकिळु। स्थिरु नोहे ॥ २३०॥
का सकर्दम सरोवरु। अवलोकूनि चकोरु। न सेवितु अव्हेरु। करूनि निघे ॥ २३१॥

तयापरी तुं देवा। मज झकवूं न येसीं मावा। जरी पुण्याचा वोलावा। नाशिजैल ॥ २३२॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७॥

म्हणोनि मी हें न करीं। इये संग्रामीं शस्त्र न धरीं। हें किडाळ बहुतीं परी। दिसतसे ॥ २३३॥
तुजसीं अंतराय होईल। मग सांगे आमुचें काय उरेल ?। तेणें दुःखें हियें फुटेल। तुजवीण कृष्णा ॥ २३४॥
म्हणौनि कौरव हे वधिजती। मग आम्ही भोग भोगिजती। हे असो मात अघडती। अर्जुन म्हणे ॥ २३५॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९॥

हे अभिमानमदें भुललें। जरी पां संग्रामा आले। तऱ्ही आम्हीं हित आपुलें। जाणावें लागे ॥ २३६॥
हें ऐसें कैसें करावें ?। जे आपुले आपण मारावे ?। जाणत जाणतांचि सेवावें। काळकूट ? ॥ २३७॥
हां जी मार्गीं चालतां। पुढां सिंहु जाहला आवचिता। तो तंव चुकवितां। लाभु आथी ॥ २३८॥
असता प्रकाशु सांडावा। मग अंधकूप आश्रावा। तरी तेथ कवणु देवा। लाभु सांगे ? ॥ २३९॥
कां समोर अग्नि देखोनी। जरी न वचिजे वोसंडोनी। तरी क्षणा एका कवळूनी। जाळूं सके ॥ २४०॥
तैसे दोष हे मूर्त। अंगी वाजों असती पहात। हें जाणतांही केवीं एथ। प्रवर्तावें ? ॥ २४१॥
ऐसें पार्थु तिये अवसरीं। म्हणे देवा अवधारीं। या कल्मषाची थोरी। सांगेन तुज ॥ २४२॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४०॥

जैसें कष्टें काष्ठ मथिजे। तेथ वन्हि एक उपजे। तेणें काष्ठजात जाळिजे। प्रज्वळलेनि ॥ २४३॥
तैसा गोत्रींचीं परस्परें। जरी वधु घडे मत्सरें। तरी तेणें महादोषें घोरें। कुळचि नाशे ॥ २४४॥
म्हणौनि येणें पापें। वंशजधर्मु लोपे। मग अधर्मुचि आरोपे। कुळामाजीं ॥ २४५॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥ ४१॥

एथ सारासार विचारावें। कवणें काय आचारावें। आणि विधिनिषेध आघवे। पारुषती ॥ २४६॥
असता दीपु दवडिजे। मग अंधकारीं राहाटिजे। तरी उजूचि कां अडळिजे। जयापरी ॥ २४७॥
तैसा कुळीं कुळक्षयो होय। तये वेळीं तो आद्यधर्मु जाय। मग आन कांहीं आहे। पापावांचुनी ? ॥ २४८॥
जैं यमनियम ठाकती। तेथ इंद्रिये सैरा राहाटती। म्हणौनि व्यभिचार घडती। कुळस्त्रियांसी ॥ २४९॥

उत्तम अधर्मीं संचरती। ऐसे वर्णावर्ण मिसळती। तेथ समूळ उपडती। जातिधर्म ॥ २५०॥
जैसी चोहटाचिये बळी। पाविजे सैरा काउळीं। तैसीं महापापें कुळीं। संचरती ॥ २५१॥

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ४२॥

मग कुळा तया अशेखा। आणि कुळघातकां। येरयेरां नरका। जाणें आथी ॥ २५२॥
देखें वंशवृद्धि समस्त। यापरी होय पतित। मग वोवांडिती स्वर्गस्थ। पूर्वपुरुष ॥ २५३॥
जेथ नित्यादि क्रिया ठाके। आणि नैमित्तिक क्रिया पारुखे। तेथ कवणा तिळोदकें। कवण अर्पी ? ॥ २५४॥
तरी पितर काय करिती ?। कैसेनि स्वर्गीं वसती ?। म्हणौनि तेही येती। कुळापासीं ॥ २५५॥
जैसा नखाग्रीं व्याळु लागे। तो शिखांत व्यापी वेगें। तेवीं आब्रह्म कुळ अवघें। आप्लविजे ॥ २५६॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३॥
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४॥
अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५॥

देवा अवधारी आणीक एक। एथ घडे महापातक। जे संगदोषें हा लौकिक। भ्रंशु पावे ॥ २५७॥
जैसा घरीं आपुला। वानिवसें अग्नि लागला। तो आणिकांहीं प्रज्वळिला। जाळूनि घाली ॥ २५८॥
तैसिया तया कुळसंगती। जे जे लोक वर्तती। तेही बाधा पावती। निमित्तें येणें ॥ २५९॥
तैसें नाना दोषें सकळ। अर्जुन म्हणे तें कुळ। मग महाघोर केवळ। निरय भोगी ॥ २६०॥
पडिलिया तिये ठायीं। मग कल्पांतींही उकलु नाहीं। येसणें पतन कुळक्षयीं। अर्जुन म्हणे ॥ २६१॥
देवा हें विविध कानीं ऐकिजे। परी अझुनिवरी त्रासु नुपजे। हृदय वज्राचें हें काय कीजे। अवधारीं पां ॥ २६२॥
अपेक्षिजे राज्यसुख। जयालागीं तें तंव क्षणिक। ऐसे जाणतांही दोख। अव्हेरू ना ? ॥ २६३॥
जे हे वडिल सकळ आपुले। वधावया दिठी सूदले। सांग पां काय थेंकुलें। घडलें आम्हां ? ॥ २६४॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६॥

आतां यावरी जें जियावें। तयापासूनि हें बरवें। जे शस्त्र सांडुनि साहावे। बाण यांचे ॥ २६५॥
तयावरी होय जितुकें। तें मरणही वरी निकें। परी येणें कल्मषें। चाड नाहीं ॥ २६६॥
ऐसें देखून सकळ। अर्जुनें आपुलें कुळ। मग म्हणे राज्य तें केवळ। निरयभोगु ॥ २६७॥

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥१अ ॥

ऐसे तिये अवसरी। अर्जुन बोलिला समरीं। संजयो म्हणे अवधारीं। धृतराष्ट्रातें ॥ २६८॥
मग अत्यंत उद्वेगला। न धरत गहींवरु आला। तेथ उडी घातली खालां। रथौनियां ॥ २६९॥
जैसा राजकुमरु पदच्युतु। सर्वथा होय उपहतु। कां रवि राहुग्रस्तु। प्रभाहीनु ॥ २७०॥
नातरी महासिद्धिसंभ्रमें। जिंतिला तापसु भ्रमें। मग आकळूनि कामें। दीनु कीजे ॥ २७१॥
तैसा तो धर्नुधरु। अत्यंत दुःखें जर्जरु। दिसे जेथ रहंवरु। त्यजिला तेणें ॥ २७२॥
मग धनुष्य बाण सांडिले। न धरत अश्रुपात आले। ऐसें ऐक राया वर्तलें। संजयो म्हणे ॥ २७३॥
आतां यापरी तो वैकुंठनाथु। देखोनि सखेद पार्थु। कवणेपरी परमार्थु। निरूपील ॥ २७४॥
ते सविस्तर पुढारी कथा। अति सकौतुक ऐकतां। ज्ञानदेव म्हणे आतां। निवृत्तिदासु ॥ २७५॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां प्रथमोऽध्यायः ॥

Encoded and proofread by
Chhaya Deo, Sharad Deo, and Vishwas Bhide.
Assisted by
Sunder Hattangadi, Joshi, and Shree Devi Kumar.

Please send corrections to sanskrit@cheerful.com
Last updated November 23, 2008